उपनिषद वाणी

जीवन में स्वतंत्रता का मूल्य सर्वोपरि है, प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रहना चाहता है वह हमेशा यही उपाय करता है कि उसे कोई रोकने-टोकने वाला ना हो, वह अपने आस-पास ऐसे प्रबन्ध, ऐसी व्यवस्था करता है कि उसके जीवन में किसी की दखलंदाजी ना बने। प्रत्येक व्यक्ति इसी मनोदशा में जी रहा है, हर किसी को स्वतंत्रता चाहिये, वह चाहता है कि उसके माता-पिता उसे रोके-टोके नहीं। पत्नी अपने पति से, बहन-भाई से हर कोई ऐसी ही अपेक्षा रखता है और तो और समाज से भी ऐसी अपेक्षायें रखी जाने लगी हैं।

हजारों साल से यह सूत्र आदमी को पता है और इन हजारों सालों में **सभी लोगों ने कभी कृष्ण के पास ग्वालों के रूप में, बुद्ध के पास भिक्षुक के रूप में, किसी ने क्राईस्ट के पास, किसी ने मोहम्मद के पास इस पृथ्वी पर कभी योग करके, कभी ध्यान करके, कभी मंत्र साधना कर, कभी तंत्र साधना कर, कभी हठ त्याग कर, आनंद की प्राप्ति के लिये सभी प्रयास कर चुके हैं।** परन्तु जब मैं अपने शिष्यों के भीतर झांक कर देखता हूँ तो पाता हूँ कि कोई शिष्य ऐसा नहीं है जिसने किसी न किसी जन्म में कोई साधना नहीं की हो, कुछ न कुछ विलक्षण कार्य न किये हों, परन्तु जो हुयी भी है और ये बात अन्तर्मन में चेतना में वह असफलता अपना प्रभुत्व जमा बैठी उसका कारण है अधर्म का प्रभुत्व पूरे विश्व में बढ़ता हुआ दिखायी देना क्योंकि धर्म अधिक लोगों के लिये असफल हो गया है।

आप साधना से गुजरेंगे तो यह परिणाम घटते हैं इनकी आपको चिन्ता नहीं करनी है, न इनका विचार करना है, न इनकी आकांक्षा करनी है और न ही जल्दी करनी है कि यह कार्य पूर्ण हो जाये, इस जल्दी के कारण ही सब विपरीत हो जाता है और **मेरा अनुभव है कि जितनी जल्दी करोगे उतनी देर हो जायेगी, क्योंकि जल्दी करने वाला मन शांत हो ही नहीं सकता, जल्दी है तो अशांति का कारण है और हम सभी दैनिक चर्या में देखते है कि कभी कभी जल्दी में कैसी मुश्किल हो जाती है।** रेल गाड़ी पकड़नी है और जल्दी में हैं, तो **जो कार्य पांच मिनट में हो सकता था, वहीं कार्य दस मिनट ले लेता है। वस्त्र ही उल्टे पहन लेते हैं फिर निकालो, फिर पहनों अब बटन ऊपर नीचे लग जाते हैं, फिर खोलों, फिर लगाओं, ताला लगाते समय चाबी ताले के अन्दर ही रह जाती है, गौर से देखा तो इस ताले कि चाबी ही नहीं है, गुच्छे में दूसरी तलाश करते है, वह भी नहीं लगती फिर तीसरी तलाशते है, इस प्रकार जल्दी करना मन को अस्त-व्यस्त कर देता है और भूल होती है।** इसलिये जब छोटी-छोटी बातों में जल्दी करना देर का कारण बन जाता है, तो विराट यात्रा पर तो जल्दी करना बहुत देर करवा देगी।

जीवन में ऊँचा उठना है और यदि नहीं उठते हैं तो यह जीवन व्यर्थ है, क्योंकि ऊँची सीढ़ी पर चढ़ना बहुत कठिन है, नीचे फिसलना बहुत आसान है। दस सीढ़ियों से नीचे उतरने में एक सैकण्ड लगता है, परन्तु दस सीढ़ी चढ़ने में आपको बीस सैकण्ड लगेगा। एक-एक सीढ़ी चढ़नी पड़ेगी, आपको निरन्तर-निरन्तर यही चिंतन करना पड़ेगा कि क्या मेरे अन्दर ऊपर उठने का भाव बन रहा है या नहीं, सद्गुणों का विकास हो रहा है या नहीं। मेरा जीवन कैसा व्यतीत हो रहा है-अपने आप में विश्लेषण करना जीवन की श्रेष्ठता है, महानता है और यह वह व्यक्ति कर सकता है जो

अपने आप में बिल्कुल शिष्यवत बनकर गुरू से एकाकार होने का सामर्थ्य रखता है और शंकराचार्य कहते है, ऐसे ही व्यक्ति गुलाब के फूल बनते है, जो सही अर्थो में गुरू के लिये अपने आपको समर्पित कर देते है।

चिंतन में एक संघर्ष है अन्दर। जो भी आप चिंतन करते है, उसमें आप जूझते है, लड़ते है, एक आन्तरिक लड़ाई चलती है। आप अपने सारे अतीत की स्मृति और सारे अतीत के विचारों को उसके खिलाफ खड़ा कर देते है। फिर भी अगर हार जाते है, तो मान लेते हैं, लेकिन मानने में एक पीड़ा, एक कांटा चुभता रहता है। वह मानना मजबूरी का है उस मानने में कोई प्रफुल्लता घटित नहीं होती। उसे मानने से आपका फूल खिलता नही है, मुर्झाता है। चिंतन और चिंता में कोई गुणात्मक फर्क नहीं है। सब चिंतन चिंता का ही रूप है, बेचैनी है उसमें छिपी हुई एक तनाव हैं क्योंकि एक भीतरी संघर्ष है, कलह है। मनन और चिंतन का फर्क है चिंतन शुरू होता है तर्क से, मनन शुरू होता है, संघर्ष से।

मानव ने अमृत प्राप्ति के लिये जितने भी प्रयास किये हैं, उन सब में वह असफल रहा है। केवल त्याग के द्वारा ही ब्रह्म ज्ञानीयों ने उसे पाया है। उसे पाने की शर्त एक ही है **निष्ठा**। अमृत पाने की तीव्र आकांक्षा इसलिये है कि अमृत कभी मिट नहीं सकता वह अमिट है और आप कुछ भी प्राप्त करे, वह सब तो समाप्त हो जाने वाला है। इस जगत में ऐसा कुछ भी नहीं है शाश्वत है, इसलिये ब्रह्म ज्ञानियों ने यही खोज की जो शाश्वत है, जो सदैव है, जो समाप्त नहीं हो सकता, वह मरता भी नहीं है वह अटल है। यदि हमारा सम्बन्ध इससे हो जाये हम भी उस जैसे ही हो जायेंगे। हम में कोई भेद ना होगा। **हम निर्भय हो जायेंगे क्योंकि अब भय किस बात का जब हम अमृत हो गये है और अमृत तो शाश्वत होता है।**

हमारा पूरा जीवन धन, पुत्र व पति-पत्नी पर ही आधारित हो गया है, मनुष्य धन कमाने की होड में प्रतिस्पर्धा में रात-दिन कोल्हू के बैल के समान लगा रह कर अच्छे-बुरे कर्म करता है। यदि उसे इस बात के लिये मना करे अथवा त्याग करने के लिये कहें तो वह मानेगा नहीं जैसे मैं कहूं कि तुम यह नौकरी छोड़ दो तो तुम नौकरी का त्याग नहीं करोगे अथवा मैं यह कहूं कि अपने व्यवसाय को त्याग दें तो भी तुम ऐसा नहीं करोगे। व्यक्ति जीवन भर धन इसीलिये एकत्र करता रहता है कि धन से कुछ ऐसा मिल जायेगा, जिससे मैं सुरक्षित रह सकूंगा जो समाप्त नहीं होगा लेकिन धन कमाने वाले भी समाप्त हो जाते हैं तो धन कैसे बच सकता? अतः धन से उस परम तत्व को पाना असंभव है। **व्यक्ति ऐसा सोचते है कि उनका पुत्र बड़ा होकर पढ़ लिख कर, व्यवस्थित होकर विवाहित हो जाये तथा फिर उसके बच्चे भी इसी प्रकार सेटल हो जाये। लेकिन उस व्यक्ति से यदि यह पूछा जाये इस सब को करने का क्या प्रयोजन है? क्योंकि ऐसा तो तुम पीढी-दर-पीढी करते ही आ रहे हो। तुम ही क्या और भी ऐसा ही कर रहे है, क्या इस प्रकार करने से तुम्हें अमृत्व की प्राप्ति हो जायेगी? ऐसा नहीं हो सकता अमृत तो केवल त्याग से ही मिल सकता है।**

प्रार्थना वह शक्ति है जिसमें मनुष्य पूर्णतया खो जाता है। उसे बाहरी स्थिति का, बाहरी क्रिया कलापों का कोई भान नहीं रहता। वह पूरा का पूरा स्वयं के अंदर उतर जाता है। यदि उसे प्रार्थना के समय बाहरी क्रियाकलापों का आभास होता है तो उस समय जो प्रार्थना तुम करते हो वह प्रार्थना नही, वह तो बाहर से की जाने वाली औपचारिकता मात्र है और **यदि हम पूर्ण तन्मयता के साथ प्रार्थना करे तो हमारी यात्रा सन्मार्ग की ओर आरम्भ हो जाती है तथा हम अग्नि के समान हो जाते है अर्थात् ऊर्ध्वगत हमारी ऊर्जा हो जाती है।** जैसा हम सोचेंगे वैसा ही हम बनेंगे।

हमने अग्नि को भी देखा है तो साक्षात् पानी को भी देखा है और पानी की यात्रा सदैव नीचे की ओर होती है। पानी का स्वभाव यही है कि वह नीचे से नीचे जगह को खोज लेता है ओर जहां से भी रास्ता मिले उसी रास्ते से गुजरकर सबसे नीचे के तल पर रूक जाता है जल की यात्रा अधोगमन की यात्रा है और जल एकत्र हो जाता है लेकिन **हमारे ऋषियों ने देखा तथा अनुभव किया कि अग्नि ही एक ऐसा देवता है जिसकी यात्रा ऊर्ध्वगमन की यात्रा है और मनुष्य भी केवल ऊर्ध्वगमन की यात्रा करके ही श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम बनने की क्रिया कर सकता है।** जल अपना अस्तित्व एकत्र हो कर बचाये रखता है जब कि अग्नि कितनी भी गहराई से उठे तो भी आकाश की तरफ उठती है और अग्नि सब कुछ जलाकर खाक कर देती है और साथ ही साथ स्वयं भी खो जाती है।

जो स्वयं को असहाय मानता है, अज्ञानी मानता है वह ही विनम्र होता है। वह ही यह बात कह सकता है। **हे अग्नि देव! मुझे उर्ध्वपात की ओर ले चल अर्थात् निरन्तर उच्चता की ओर, आकाश की ऊँचांइयों को छू सकूं भक्त आत्मीय भाव से ईश्वर से प्रार्थना करता है, मैंने जो किया वह उचित था या अनुचित था, मुझे मालूम नहीं लेकिन हे देव! आपको सब कुछ पता है और आपके किये से ही अब कुछ हो सकता है ओर आप ही मुझे ले चलों ऊँचाईयों की ओर मेरे कर्मों को हे देव आप जानते हैं। और मनुष्य को सद्मार्ग पर अग्रसर होने के लिये ही किसी देवता रूपी गुरू की सहायता और मार्गदर्शन चाहिये।** सद्मार्ग पर बढ़ने के लिये राह में आई **बाधाओं** के कारण उसके पग डगमगाते है अन्यथा किसी भी असद्मार्ग पर जब वह बढ़ता है तो स्वयं ही बढ़ता जाता है और पानी की तरह अपना मार्ग स्वयं खोजता हुआ अपनी मंजिल पर पहुँचता है। **अतः अधोगमन का रास्ता स्वयं के कारण है तथा ऊर्ध्वगमन का रास्ता स्वयं के अहंकार को खोने का रास्ता है।**

आशीर्वाद के साथ
कैलाश श्रीमाली